कुछ बुनियादी सवाल

महिलाओं के साथ आर्थिक कार्यक्रम

मीनू वढेरा

प्रिय सीमा,

तुम्हारा पत्र मिला और यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम अपने क्षेत्र में महिला संगठनों के साथ बहुत तन्मयता से कार्यरत हो। तुमने अपने पत्र में महिलाओं के साथ आर्थिक कार्यक्रम शुरू करने के बारे में बात की है। विचार तो बहुत सुंदर है, किन्तु इस पूरे विषय को लेकर मेरे मन में कुछ सवाल हैं, कुछ ख्याल हैं, जो मैं तुमसे बांटना चाहूंगी।

सबसे पहले तो यह मुद्दा उठता है कि आर्थिक कार्यक्रम "महिलाओं" के साथ ही क्यों? क्या हमारा उद्देश्य सिर्फ (परिवार की) आय बढ़ाना है या उससे बढ़कर भी कुछ और। यदि परिवार की आय बढ़ाना ही हमारा उद्देश्य है (और यह उम्मीद है कि आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आने से परिवार में महिला की स्थिति में सुधार होगा) तो फिर यह आर्थिक कार्यक्रम पुरुषों के साथ क्यों नहीं। क्यों महिलाओं पर बोझ और अधिक बढ़ाया जाए।

परिवार को इकाई मानकर चलाए गए कई विकास कार्यक्रमों का अध्ययन करने से साफ पता चलता है कि पारिवारिक विकास का मतलब परिवार में महिला की स्थिति में विकास से नहीं है। न ही अधिक आर्थिक संपन्नता का महिलाओं के शोषण से बहुत गहरा संबंध है।

आमतौर पर यह समझा जाता है कि चूंकि महिलाएं आर्थिक रूप से स्वावलंबी नहीं हैं इसलिए वे घर-परिवार में शोषित होती हैं। इस कारण को मूल समझकर तय किया जाता है कि महिलाओं के विकास के लिए उनको रोज़गार उपलब्ध करवाने की आवश्यकता है। इस प्रकार सिलाई, कढ़ाई, पापड़-बड़ी, आचार, नर्सरी आदि तमाम तरह के आर्थिक कार्यक्रम महिलाओं के लिए चलाए जाते हैं।

किन्तु, क्या इससे वास्तव में महिलाओं की स्थिति में सुधार हो सकता है या होता है?

आर्थिक उन्नति जादुई छड़ी नहीं

यदि गहराई से सोचा जाए तो क्या वे सब महिलाएं जो कमाती हैं, नौकरी करती हैं, मजदूरी करती हैं, वे भी क्या शोषित नहीं होती? चाहे मजदूरी करने वाली बहनें हैं या पत्थर काटने वाली, कूड़ा उठाने वाली या सफाई करने वाली, और चाहे स्कूल में अध्यापिका हो या कालेज में, घर, परिवार और समाज में उनकी परिस्थिति घर में काम-काज करने वाली महिलाओं से कोई खास अच्छी नहीं।

कमाई पर नियंत्रण

बात इसी मुद्दे पर आती है कि पैसा कमाना एक पहलू है, किन्तु पैसे का उपयोग, उस पैसे के खर्च पर नियंत्रण, यह दूसरी बात है। मेरी समझ में आर्थिक स्वावलंबन का अर्थ सिर्फ पैसा कमाना ही नहीं है, वरन् उसके उपयोग पर नियंत्रण का अधिकार होना भी है। यह तभी संभव है जब महिलाओं के आर्थिक स्वावलंबन की बात को,

महिलाओं की सशक्तिकरण की प्रक्रिया के साथ जोड़ कर देख पाएंगे।

इसलिए ज़रूरी है कि हम कोई भी आर्थिक कार्यक्रम चलाने से पहले कुछ सवालों पर स्वयं सोचें।

— क्या इन आर्थिक कार्यक्रमों के द्वारा हम महिलाओं को और सबल बना रहे हैं?
— क्या यह कार्यक्रम उनकी पारंपरिक भूमिकाओं और पूर्वाग्रहों को और अधिक मजबूत तो नहीं कर रहे?
— क्या यह कार्यक्रम महिलाओं को घर की चारदीवारी में और मजबूती से कैद तो नहीं कर रहे?
— क्या यह कार्यक्रम पारिवारिक आय बढ़ाने के साथ-साथ महिलाओं को उनके अंदर छिपी ताकत का अहसास दिला पाते हैं?
— क्या यह कार्यक्रम महिलाओं के नियंत्रण के दायरे को और बढ़ाने में सक्षम हैं या नहीं?

दोहरी जिम्मेवारी

इन बुनियादी सवालों पर सोचे बिना शुरू किए आर्थिक कार्यक्रम महिलाओं पर जिम्मेवारियों और उत्तरदायित्व के बोझ को और ज्यादा बढ़ा देते हैं। महिलाएं वैसे ही घर संभालती हैं, बच्चे जनती हैं, उन्हें पालती पोसती हैं, खेत में या अन्य बाहर के काम करती हैं। वे जंगल जाती हैं, लकड़ी लाती है, पानी भरती हैं, आंगन लीपती हैं और हम उनके ऊपर कमाई का भार भी डाल देते हैं। ताकि परिवार को चलाने की भी जिम्मेवारी वे अपने ऊपर ले लें।

सिलाई, कढ़ाई, पापड़, बडी आदि पारंपरिक कार्यक्रम चलाकर हम शायद उनकी पारंपरिक भूमिकाओं को और मजबूत करते हैं। "घर की चारदीवारी में ही रहकर" अब वे दो घंटा आराम करने की जगह काम करने में जुट सकती हैं। इस तरह एक तो उनका आपस में मिलने जुलने का समय और भी कम हो जाता है, दूसरे उन पर काम का बोझ और भी बढ़ जाता है। घर की चारदीवारी में उसकी कैद और भी जटिल होती है। न उनको नया ज्ञान रचने का मौका मिलता है, न नयी चेतना और न ही नयी जानकारी। मिलती हैं तो कुछ "क्षमताएं" और चंद पैसे। और इन क्षमताओं और पैसों का मालिक होता है—वही, घर का पुरुष मुखिया।

क्या तुम्हें यूं नहीं लगता कि हम महिलाओं को और सबल बनाने की जगह, उन्हें जिम्मेवारियों और कर्त्तव्यों के और भी गहरे खड्डे में धकेल देते हैं!

असली मुद्दा

महिलाओं के शोषण का सबसे बुनियादी पहलू "पैसे की कमी" नहीं है। असली मुद्दा है अपने जीवन, अपने शरीर, अपने परिवार और समाज में—हर स्तर पर "नियंत्रण का अभाव"। क्या यह आर्थिक कार्यक्रम उसके नियंत्रण की सीमा रेखा को जरा भी कम करते हैं?

स्थानीय परिस्थितियों व संदर्भ में कई रास्ते निकाले जा सकते हैं। कहीं-कहीं पर ठेठ पारंपरिक गतिविधियों को भी बहुत रचनात्मक रूप से अपनाया गया है। सामूहिक स्तर पर सिलाई, कटाई, अचार, पापड़ आदि बनाने के साथ-साथ महिलाओं की समस्याओं पर सामूहिक विश्लेषण एवं चिंतन कर एक संगठित शक्ति का अहसास जगाने की कोशिश की गई है। कहीं-कहीं पर ऐसी गतिविधियों को चुना गया है जो अभी तक "पुरुष के कार्यों" में गिनी जाती थीं, जैसे मैकेनिक कार्य, खड्डी बुनाई या खेती संबंधित बीज व खाद समिति आदि। पारंपरिक रूप से जो पुरुषों की सत्ता के दायरे हैं—वे चाहे सोच विचार के हों या हिसाब-किताब के, बाजार के या पैसे के—इन दायरों को यदि सीधे और सरल तरीके से महिलाओं की पहुंच तक ले आएंगे तो मेरे विचार से हम सिर्फ आय वृद्धि से बढ़कर कुछ और भी कर पाएंगे।

इन चंद पन्नों में मैंने बहुत कुछ कहने की कोशिश की है। यदि तुम्हारे कुछ प्रश्न, कुछ नए विचार उठे हों, तो मुझे जरूर लिखना।

स्नेह सहित

मीनू